टी. नागप्पा

बनाम

वाई. आर. मुरलीधर

(आपराधिक अपील संख्या 707/2008)

अप्रैल 24,2008

(एस. बी. सिन्हा और लोकेश्वर सिंह पंटा, जे. जे.)

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973:

धारा 243- बचाव साक्ष्य- धारा 138- परक्राम्य लिखत अधिनियम- अभियुक्त द्वारा चैक के दुरुपयोग किये जाने का बचाव लेते हुए प्रश्नगत चैक के संदर्भ में उसके हस्ताक्षर की आयु/अवधि कि जांच के लिये फोरेंसिक प्रयोगशाला में भिजवाए जाने के लिये प्रार्थना पत्र पेश किया गया - निर्णितः- अभियुक्त के बचाव के अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 21 व संहिता की धारा 243(2) के अन्तर्गत मान्यता दी गई है। न्यायालय को यह निर्धारित करना आवश्यक है कि प्रार्थना-पत्र सद्भाविक है या नहीं- तथ्य के संबंध में प्रार्थना-पत्र सद्भाविक था-न्यायिक मजिस्ट्रेट तथा उच्च न्यायालय के प्रार्थना-पत्र को खारिज करने का आदेश अपास्त-अनु० 21 भारतीय संविधान 1950-धारा 20 व 138 परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881

परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881

धारा 20 - अधुरी लिखत- विचारित अभियुक्त द्वारा चैक को उस पर अंकित उसके हस्ताक्षर की आयु/अवधि जानने के लिए चैक को फोरेंसिक प्रयोगशाला को भिजवाये जाने हेतु प्रार्थना पत्र-न्यायिक मजिस्ट्रेट और उच्च न्यायालय द्वारा खारिज - निर्णितः धारा 20 के अन्तर्गत केवल उसमें उल्लिखित शर्तों के अधीन चैक धारक को अधिकार दिए गये हैं। जब यह बचाव लिया जाता है कि परिवादी ने चैक का दुरूपयोग किया है, तो अधिनियम की धारा 118(क) अथवा 139 के अधीन अपधारणा के होते हुए भी, अभियुक्त को खंडन में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर देना आवश्यक है। धारा 243 दंण्ड प्रक्रिया संहिता 1973।

व्यवहार तथा प्रक्रियाः

प्रार्थना पत्र में प्रावधान का उल्लेख नहीं करना अथवा गलत उल्लेख करना- निर्णितः यदि न्यायालय को वह आदेश पारित करने का क्षेत्राधिकार है तो यह बात प्रासंगिक नहीं होगी।

अपीलार्थी ने उसके विरूद्ध लम्बित धारा-138 परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 के तहत लम्बित कार्यवाही में न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रश्नगत चैक को उस पर अंकित उसके हस्ताक्षर की आयु/अवधि की जांच के लिये निदेशक फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला को भिजवाया जाने हेतु प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किया। प्रार्थना-पत्र में धारा-243 दण्ड प्रक्रिया संहिता

1973 के स्थान पर धारा-293 अंकित की गई। अपीलार्थी का मामला यह था कि प्रत्यर्थी ने उससे सन् 1999 में एक हस्ताक्षरित चैक ऋण भुगतान कि प्रतिभूति के रूप में प्राप्त किया, जिसका पूर्व में भुगतान कर दिया गया था तथा इसके पश्चात परिवादी ने उक्त चैक का दुर्पयोग किया। मजिस्ट्रेट तथा उच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा-20 के अवलम्बन लेते हुए प्रार्थना-पत्र को खारिज किया। उक्त आदेश से व्यथित होकर प्रार्थी ने प्रस्तुत अपील दायर की।

अपील स्वीकार

अभिनिर्धारित किया: 1.1 अभियुक्त को निष्पक्ष विचारण का अधिकार है। उसे स्वयं को मानव के रूप में तथा साथ ही भारतीय संविधान के अनु.21 में प्रतिष्ठापित मौलिक अधिकार के रूप में स्वयं के बचाव का अधिकार है। किसी व्यक्ति को उसके बचाव के अधिकार तथा उसके लिए उसे साक्ष्य प्रस्तुत करने के अधिकार को ससंद द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता के धारा 243(2) के रूप में मान्यता दी हुई है। न्यायालय में की जाने वाली कार्यवाहियों के संबंध में न्यायालय स्वामी होता है तथा उसे यह निर्धारित करना आवश्यक है कि अभियुक्त द्वारा संहिता की धारा 243(2) के अधीन पेश किया गया प्रार्थना पत्र सद्भाविक है अथवा नहीं या उसके द्वारा अभियुक्त किसी सुसंगत सामग्री को अभिलेख पर लाने का (पैरा-7-8)(964-C,D:965-A,B)

1.2 प्रस्तुत मामले में विचारण न्यायालय के साथ ही उच्च न्यायालय ने भी परक्राम्य लिखत अधिनियम 1981 की धारा-20 के प्रावधान को दृष्टिगत रखते हुए प्रार्थना पत्र खारिज किया। अधिनियम की धारा-20 के तहत उसमें उल्लिखित शर्तों के अधीन चैक धारक के पक्ष में केवल प्रथम दृष्टया अधिकार ही प्रदत्त किया गया है। अन्य बातों के साथ साथ यथा प्रार्थी द्वारा सद्भाविक रूप से प्रार्थना पत्र पेश किया गया है। इस प्रकार केवल प्रथम दृष्टया अधिकार ही दिया जाता है, जैसे अपूर्ण परक्राम्य लिखत को पूर्ण करना। जब यह बचाव लिया जाता है कि परिवादी ने चैक का दुरूपयोग किया है, तो अधिनियम की धारा 118(क) अथवा 139 के अधीन अपधारणा के होते हुए भी, अभियुक्त को खंडन में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर देना आवश्यक है। जैसा कि विधि अभियुक्त पर भार अधिरोपित करती है, उसे उस भार को उन्मोचित किये जाने का अवसर दिया जाएगा। प्रस्तुत मामले में अपीलार्थी द्वारा पेश किया गया प्रार्थना पत्र सद्भाविक था। (पैरा 6-7 व 9) (963-डी,एच:964-ए,सी:965-ई)

2: संहिता कि धारा 243 के स्थान पर त्रुटिपूर्वक धारा 293 का उल्लेख करना मामले को ज्यादा प्रभावित नहीं करेगा। यह विधि का सुस्थापित सिद्धान्त है कि विधि के किसी प्रावधान का उल्लेख नहीं करना अथवा त्रुटिपूर्ण उल्लेख करना प्रासंगिक नहीं होगा, यदि न्यायालय को किसी आदेश को पारित करने का अपेक्षित क्षेत्राधिकार था। (पैरा 11) (966-f,g)

कल्याणी भास्कर बनाम एम.एस.समपूरणम (2007) 2 एसीसी 258 -माना गया

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकारः आपराधिक अपील नंबर 707/2008

कर्नाटका उच्च न्यायालय बैंगलोर द्वारा आपराधिक याचिका संख्या 108/2007 में पारित अंतिम निर्णय व आदेश दिनांकित 24-01-2007 के विरूद्ध।

एस.बी.सन्याल, राजेश महाले अपीलार्थी की ओर से

किरण सूरी, एस.जे.अमित व अर्पणा भट्ट प्रतियर्थी की ओर से

न्यायालय का निर्णय एस.बी.सिन्हा, जे. द्वारा दिया गया

1. अनुमति प्रदान की गई।

2. अपीलार्थी XV अतिरिक्त मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट, बैंगलोर के न्यायालय में सी.सी.नम्बर 6835/2005 में परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराधिक आरोपों का सामना कर रहा है। कथित रूप से उसने प्रत्यर्थी के पक्ष में एक चैक राशि सात लाख पचास हजार रूपये का दिनांक 08-10-2004 को जारी किया जो कि बैंक में जमा कराये जाने पर तथाकथित बिना भुगतान के लौटा दिया गया। प्रत्यर्थी द्वारा एक परिवाद इस आशय का प्रस्तुत किया गया कि अपीलार्थी ने परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपराध कारित किया था।

3. दिनांक 01-08-2006 को या उसके आस पास अपीलार्थी ने प्रश्नगत चैक पर उसके हस्ताक्षर की अवधि/आयु का निर्धारण करने के लिए उसे निदेशक विधि विज्ञान प्रयोगशाला में भेजने हेतु एक प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा 243 दण्ड प्रक्रिया संहिता, जिसमें उसने गलती से धारा 293 दण्ड प्रक्रिया संहिता का उल्लेख किया, इस तर्क के साथ पेश किया कि प्रत्यर्थी ने उससे सन् 1999 में एक हस्ताक्षरित चैक 50,000/- रूपये के ऋण भुगतान कि प्रतिभूति के रूप में प्राप्त किया था, जिसका पूर्व में भुगतान कर दिया गया था, किंतु अपीलार्थी को उक्त चैक वापिस लौटाने के स्थान पर उसमें बड़ी राशि भरकर उक्त चैक का दुर्पयोग किया गया है, जिस राशि को अपीलार्थी ने उधार नहीं लिया।

4. आदेश दिनांक 29-11-2006 के कारण विद्वान मजिस्ट्रेट ने उक्त प्रार्थना पत्र यह राय व्यक्त करते हुए खारिज किया कि:

> "अभियुक्त का एक अन्य मुख्य तर्क यह है कि चैक पर हस्ताक्षर वर्ष 1999 में किये गये थे तथा चैक पर दर्शित इबारत/लिखावट को माह अगस्त, अक्टूबर व दिसम्बर 2004 में भरा गया है। अभियुक्त उक्त पहलू को ठोस साक्ष्य पेश करके साबित करने के लिये स्वतंत्र है। मेरी राय में, प्रदर्श 2 पर अंकित इबारत की आयु को साबित करने के लिए उसे हस्तलिपि विशेषज्ञ को भेजना आवश्यक नहीं है।

इस प्रकार किसी भी दृष्टिकोण से मैं प्रदर्श 2 को हस्तलिपि विशेषज्ञ को भेजे जाने की याचिका में की गयी प्रार्थना का कोई उचित कारण नहीं पाता हूं। अतः मैं उक्त बिंदू के संबंध में मेरा उत्तर नकारात्मक है।"

5. इसके विरूद्ध प्रस्तुत पुनरिक्षण आवेदन को उच्च न्यायालय द्वारा भी खारिज किया गया जिसमें कहा गया कि:

"अभियुक्त याचिकाकर्ता का यह मामला है कि अभियुक्त के हस्ताक्षरित चैक को याचिकाकर्ता द्वारा 5 वर्ष पश्चात उसमें विवरण भरकर चैक का दुर्पयोग किया गया। याचिकाकर्ता के अनुसार चैक वर्ष 1999 का है तथा परिवादी ने उक्त चैक को 9-10-2004 की तारीख डालते हुए भरा है। अतः उक्त चैक की आयु/अवधि सुनिश्चित करने के लिए यह आवेदन याचिकाकर्ता द्वारा पेश किया गया जिसे खारिज किया गया।

डी.डब्ल्यू 2 सहायक प्रबंधक, यूको बैंक, जयनगर शाखा, बैंगलोर की साक्ष्य तथा प्रदर्श डी 11 का विवरण, जो कि चैकबुक जारी करने का रजिस्टर है, से प्रकट होता है कि यूको बैंक द्वारा दिनांक 06-05-1997 को चैक प्रदर्श पी 2

अभियुक्त को जारी किया गया था। यदि ऐसा है तो, चैक की आयु/अवधि का निर्धारण विचार योग्य नहीं है।

इस मामले में चैक पर हस्ताक्षर स्वीकृत हैं, यदि ऐसा है तो याचिकाकर्ता परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 20 के प्रावधान के तहत चैक के विशिष्टयों को विवादित नहीं कर सकता। अतः चैक को हस्तलिपि विशेषज्ञ को भेजे जाने की आवश्यकता नहीं है।"

6. विद्वान विचारण न्यायाधीश व साथ ही उच्च न्यायालय ने उनके संबंधित आदेशों में परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 20 का अवलम्ब लिया है जो कि इस प्रकार है:

"धारा 20. स्टाम्पित अधूरी लिखत.- जहां कि एक व्यक्ति 1[भारत] में परक्राम्य लिखत-संबंधी तत्समय प्रवृत्त विधि के अनुसार, स्टाम्पित और या तो पूर्णतः निरंक या उस पर अपूरित परक्राम्य लिखत लिखकर कोई कागज हस्ताक्षरित करता है और किसी दूसरे को परिदत्त कर देता है जहां वह उसके धारक को तद्द्वारा यह प्रथमदृष्टया प्राधिकार देता है कि वह किसी भी रकम के लिए, जो उसमें विनिर्दिष्ट हो, और उस रकम से अधिक न हो जिसके लिए वह स्टाम्प पर्याप्त है, परक्राम्य लिखत उस पर यथास्थिति रच ले या

पूर्ण कर ले। ऐसे हस्ताक्षर करने वाला व्यक्ति अपनी उस हैसियत में, जिसमें उसने उस पर हस्ताक्षर किया, किसी भी सम्यक्-अनुक्रम-धारक के प्रति ऐसी रकम के लिए ऐसी लिखत पर दायी होगा: परन्तु सम्यक्-अनुक्रम-धारक से भिन्न कोई भी व्यक्ति लिखत परिदत्त करने वाले व्यक्ति से उस रकम से अधिक कुछ वसूल न करेगा तो उसके द्वारा तदधीन संदत्त की जाने के लिए आशयित थी।"

उपरोक्त प्रावधान के कारण उसमें उल्लिखित शर्तों के अधीन चैकधारक के पक्ष में केवल प्रथम दृष्टया अधिकार ही प्रदत्त किया गया है। इस प्रकार केवल प्रथम दृष्टया प्राधिकार प्रदान किया गया है, जिसमें अन्य बातों के साथ साथ, किसी अधूरी परक्राम्य लिखत को पूर्ण करना शामिल है।

उपरोक्त प्रावधान एक बाधा उत्पन्न करता है, अर्थात सम्यक्-अनुक्रम-धारक से भिन्न कोई भी व्यक्ति लिखत परिदत्त करने वाले व्यक्ति से उस रकम से अधिक कुछ वसूल न करेगा तो उसके द्वारा तदधीन संदत्त की जाने के लिए आशयित थी।

7. जब यह तर्क उठाया गया है कि परिवादी ने चैक का दुरूपयोग किया है, तो अधिनियम की धारा 118(क) अथवा 139 के अधीन अपधारणा के होते हुए भी, अभियुक्त को खंडन में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर देना

आवश्यक है। चूंकि विधि अभियुक्त पर भार अधिरोपित करती है, जिसे उन्मोचित करने का अवसर उसे दिया जाना आवश्यक है।

अभियुक्त को निष्पक्ष विचारण का अधिकार है। उसे स्वयं को मानव के रूप में तथा साथ ही भारतीय संविधान के अनु.21 में प्रतिष्ठापित मौलिक अधिकार के रूप में स्वयं के बचाव का अधिकार है। किसी व्यक्ति को उसके बचाव के अधिकार तथा उसके लिए उसे साक्ष्य प्रस्तुत करने के अधिकार को ससंद द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता के धारा 243(2) के रूप में मान्यता दी हुई है जो कि इस प्रकार है :

"धारा 243. प्रतिरक्षा का साक्ष्य - (1)...

(2) यदि अभियुक्त अपनी प्रतिरक्षा आरंभ करने के पश्चात् मजिस्ट्रेट से आवेदन करता है कि वह परीक्षा या प्रतिरक्षा के, या कोई दस्तावेज या अन्य चीज पेश करने के प्रयोजन से हाजिर होने के लिए किसी साक्षी को विवश करने के लिए कोई आदेशिका जारी करे तो, मजिस्ट्रेट ऐसी आदेशिका जारी करेगा जब तक उस का यह विचार न हो कि ऐसा आवेदन इस आधार पर नामंजूर कर दिया जाना चाहिए कि वह तंग करने के या विलंब करने के या न्याय के उद्देश्यों को विफल करने के प्रयोजन से किया गया है, और ऐसा कारण उसके द्वारा लेखबद्ध किया जाएगाः

परन्तु जब अपनी प्रतिरक्षा आरंभ करने के पूर्व अभियुक्त ने किसी साक्षी की प्रतिपरीक्षा कर ली है या उसे प्रतिपरीक्षा करने का अवसर मिल चुका है तब ऐसे साक्षी को हाजिर होने के लिए इस धारा के अधीन तब तक विवश नहीं किया जाएगा जब तक मजिस्ट्रेट का यह समाधान नहीं हो जाता है कि ऐसा करना न्याय के प्रयोजनों के लिए आवश्यक है।"

8. साक्ष्य की प्रकृति क्या होनी चाहिए, यह ऐसा विषय नहीं है जिसे केवल न्यायालय के विवेक पर छोड़ा जाना चाहिए। यह अभियुक्त है जो अपने बचाव को साबित करना जानता है। यह सत्य है कि कार्यवाहियों का स्वामी होने के कारण न्यायालय को यह निर्धारित करना चाहिए कि क्या अभियुक्त द्वारा संहिता की धारा 243(2) के अन्तर्गत प्रस्तुत आवेदन सद्भाविक है अथवा नहीं अथवा उसका आशय अभिलेख पर किसी सुसंगत सामग्रीको लाने का है। परन्तु साधारणतः अभियुक्त को साक्षियों आदि को तलब किये जाने के संबंध में न्यायालय से संपर्क करने की अनुमति दी जानी चाहिए। यदि ऐसी अनुमति दी जाती है तो उसके लिये सिमित समय में कदम उठाये जाने चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि उस किसी चीज के लिये अभियुक्त को अनुमति नहीं दी जानी चाहिए जिससे विचारण में अनावश्यक विलम्ब होता हो अथवा उन साक्षियों को बुलाना जिनकी साक्ष्य किसी भी रूप में सुसंगत नहीं होगी।

9. विद्वान विचारण न्यायाधीश तथा उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी के तर्कों को केवल प्रक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 20 के प्रावधानों को दृष्टिगत रखते हुये अस्वीकार कर दिया। केवल यह तथ्य जिसके कारण प्रक्राम्य लिखत के धारक को प्रथम दृष्टया अधिकार प्रदान किया गया है तथा उक्त अधिकार उपरोक्त वर्णित शर्तों के अधीन है, हमारा मत है कि अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत आवेदन सद्भाविक था।

यह मुद्दा कल्याणी भास्कर (श्रीमती) बनाम एम.एस. सम्पूर्णम (श्रीमती) (2007) 2 एससीसी 258 में दिये गये इस न्यायालय के निर्णय द्वारा निस्तारित कर दिया गया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि :-

> "12. धारा 243(2) से स्पष्ट है कि मजिस्ट्रेट उसके द्वारा विचारणीय अपराध के संबंध में वह धारा 243(2) के अधीन उसकी शक्तियो का अतिक्रमण नहीं करता यदि न्यायहित में वह विशेषज्ञ की सहायता से किसी निष्कर्श पर पहुंचने के उद्देश्य से दस्तावेज को हस्तलिपि विशेषज्ञ के पास अभियुक्त के विवादित हस्ताक्षर अथवा लिखावट को किसी स्वीकृत हस्ताक्षर अथवा लिखावट से तुलना करने के लिए भेजने का निर्देश देता है। अपीलार्थी प्रत्यर्थी के मामले का खंडन करने का हकदार है और यदि दस्तावेज, अर्थात

चैक जिसे प्रत्यर्थी द्वारा अपीलार्थी के विरूद्ध आपराधिक कार्यवाही संस्थित करने का आधार बनाया गया है, वह इस मामले का खंडन करने के लिए अच्छी सामग्री प्रस्तुत करेगा , मजिस्ट्रेट ने दस्तावेज को जांच के लिए व हस्तलिपि विशेषज्ञ की राय के लिए नहीं भेज कर अपीलार्थी को खंडन करने का अवसर देने से वंचित किया है। अपीलार्थी को साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिए बिना उसे दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता और यदि इंकार किया गया है तो निष्पक्ष विचारण नहीं है। निष्पक्ष विचारण में अभियुक्त की निर्दोषता को साबित करने के लिए विधि द्वारा अनुमत निष्पक्ष व उचित अवसर भी शामिल है। बचाव के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करना एक मुल्यवान अधिकार है। उस अधिकार से इन्कार करने का अर्थ निष्पक्ष विचारण से इन्कार करना है। यह आवश्यक है कि प्रक्रिया के नियमों को इस तरह तैयार किया जाये जिससे न्याय सुनिश्चित किया जा सके और न्यायालयों को भी इस बारे में सचेत रहना चाहिए कि इसका कोई उल्लंघन नहीं किया जावे।

10. यद्यपि, निम्नलिखित के अलावा किसी अन्य प्रश्न पर किसी विशेषज्ञ की राय होना आवश्यक नहीं है:

"क्या कथित चैक के मुखपृष्ठ पर दर्शित लिखावट उसी दिन व समय लिखी गयी है जब कथित चैक के मुखपृष्ठ व पिछले पृष्ठ पर हस्ताक्षर "टी. नगप्पा" किये गये, दूसरे शब्दों में प्रदर्श पी 2 के मुखपृष्ठ पर अंकित लिखावट उक्त चैक प्रदर्श पी 2 के मुखपृष्ठ व पिछले पृष्ठ पर अंकित हस्ताक्षर "टी. नगप्पा" की आयु समान है?"

11. सुश्री सूरी ने यद्यपि यह इंगित किया है कि अपीलार्थी का प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा 293 दण्ड प्रक्रिया संहिता की होने की वजह से सही खारिज किया गया था। यह विधि का सुस्थापित सिद्धान्त है कि विधि के किसी प्रावधान का उल्लेख नहीं करना अथवा त्रुटिपूर्ण उल्लेख करना प्रासंगिक नहीं हो, यदि न्यायालय को किसी आदेश को पारित करने का अपेक्षित क्षेत्राधिकार था।

12. उपरोक्त आधारों पर आक्षेपित निर्णय को कायम नहीं किया जा सकता। इसे उपरोक्त निर्देशों के साथ तदनुसार अपास्त किया जाता है। अपील स्वीकार की जाती है।

अपील स्वीकार की गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी **अनिल कुमार शर्मा** (आर.जे.एस.), द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण : यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।